Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 27-33

अकबर कालीन धार्मिक एवं सामाजिक नीतियों पर जैन धर्म का प्रभाव

हर्ष सिंह गहलोत

सहायक आचार्य, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

भारत की जीवन परम्परा आरम्भ से ही बहुभाषा और बहुसंस्कृति के कलेवर में पल्लवित हुई है। यहाँ धर्म एवं अध्यात्म नैतिकता को जीवन का आधार मानते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का आदर्श अपनाया गया। दीर्घकाल तक यहाँ के शासकों ने भी अपनी विभिन्न मत-मतांतरों वाली प्रजा के नैतिक, भौतिक व आध्यात्मिक उत्थान हेतु शासन सिद्धान्तों को लोक कल्याणकारी मूल्यों पर संचालित करते हुए धर्म व राजनीति के सौहार्द्रपूर्ण सामंजस्य स्थापित कर 'सर्व जनहिताय सर्व जन सुखाय' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया। उनके इस कार्य के पीछे उनका उद्देश्य विभिन्न धर्मावलम्बी अपनी प्रजा में सुख व सम्मान पूर्ण जीवन के निर्वाह का विश्वास जगाना था जिसमें उनकी धार्मिक नीति ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यद्यपि मध्यकालीन भारत में इस परम्परा को सल्तनत काल के शासन के दौरान आघात पहुँचा और धार्मिक सहयोग का स्थान धार्मिक संघर्ष ने ले लिया तथा राजनीति इस धार्मिक विभेद करने का एक माध्यम बनी किन्तु भारत में मुगल साम्राज्य की सत्ता स्थापित होने के बाद इस धार्मिक संघर्ष का स्थान पुनः धार्मिक समन्वयकारी नीति ने लेना आरम्भ किया। इस काल में मुगल सम्राट अकबर तथा जैन आचार्यों के मध्य पारस्परिक संपर्क ने ना केवल दोनों पक्षों को प्रभावित किया वरन जनकल्याण का मार्ग पुनः प्रशस्त हुआ।

संकेताक्षर— *महजर, दीन-ए-इल्लाही, जजिया, यति, तपागच्छ, खरतरगच्छ, खुशफहम*

प्रस्तावना

भारत के शासकों की धार्मिक नीति ने यहाँ के जनजीवन को नैतिक, भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत करने के लिए सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना की जिसमें 'सर्व जनहिताय सर्व जन सुखाय' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को आदर्श माना जाता है। इस धार्मिक समन्वयकारी नीति कार्य में यहाँ शासकों को प्रोत्साहन देने हेतु समय-समय पर अनेक धार्मिक विद्वानों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इन धार्मिक आचार्यों की विद्वता व उच्च नैतिक आदर्श और जनकल्याण की भावना का ही परिणाम था कि समय-समय पर न केवल आम जनता बल्कि शासक वर्ग भी हिन्दू, जैन, बौद्ध, इस्लाम व अन्य धर्मों के प्रभाव को स्वीकार कर उनके विकास में योगदान देने हेतु प्रेरित हुए। यद्यपि दिल्ली सल्तनत का काल राजनैतिक उथल-पुथल का काल रहा जिसने यहाँ के धार्मिक सौहार्द के वातावरण में खटास उत्पन्न कर दी किन्तु मुगल शासन की स्थापना और विशेषकर अकबर के काल में पुनः धार्मिक सौहार्द और सामंजस्य की राह अग्रसर हुई।

यद्यपि भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर था परन्तु मुगलों की धार्मिक नीति के निर्धारण का श्रेय अकबर को दिया जाता है जिसके प्रयासों से मुगल शासन भारत में सुदृढ़ व लोकप्रिय हुआ। अकबर को तैमूरी राजवंश की उदार धार्मिक परम्परा, विरासत में मिली थी जिसने उसे धार्मिक संकीर्णता से बचाने में प्रमुख भूमिका निभाई। तैमूर में धार्मिक कट्टरता नहीं थी। वह कभी सुन्नी कभी शिया कभी जिहाद करने वाला कभी गाजी और कभी इस्लामोत्तर धर्मों का अनुयायी हो जाता था।

उसके समय से ही मुगल धार्मिक नीति कट्टरपंथ से दूर रह कर सभी संप्रदायों को समान दृष्टि से देखने का प्रयास करती आई और भारत में अपने राज्य की स्थापना के साथ ही मुगलों ने यथासम्भव अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया।[1]

इसी प्रकार भारत में मुगल शासकों की नीति भी विकसित हुई। मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर की नीति अपने पूर्ववर्ती तुर्क अफगान शासकों की तुलना में कई अधिक परिपक्व और व्यावहारिक थी यद्यपि वह अपने व्यक्तिगत जीवन में एक सच्चा सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम के नियमानुसार प्रतिदिन पाँच बार नमाज अदा करता तथा मुस्लिम सुन्नी सन्तों व उलेमाओं के प्रति आदर प्रदर्शित करता किन्तु फिर भी धार्मिक दृष्टि से उसमें संकीर्णता नहीं थी। उसने भी अपने पूर्वज तैमूर की भांति विद्यार्थियों के प्रति आवश्यकतानुकूल लचीलेपन व उदारता की नीति अपनायी यद्यपि अपने राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए धर्मांधता का सहारा लेने में भी नहीं चूका, किन्तु फिर भी उसका धार्मिक दृष्टिकोण सल्तनतकालीन शासकों की तुलना में उदार था। वह महमूद गजनवी की भांति क्रूर निर्दयी और संकीर्ण विचारधारा व धार्मिक असहिष्णुता वाला नहीं था। मध्य एशिया के मंगोलों के समान वह क्रूर व धर्मांध नहीं था परन्तु वह अकबर के समान सहिष्णु व उदार भी नहीं था।[2] उसने राजूपतों के विरुद्ध खानवा व चन्देरी के युद्धों को जिहाद घोषित कर 'गाजी' की उपाधि धारण की किन्तु बाबर द्वारा मन्दिर तोड़े जाने के अधिक प्रमाण नहीं मिलते हैं। उसने उर्वा की घाटी में जैन-देवी देवताओं की प्रतिमा को नष्ट करने का हुक्म अवश्य दिया किन्तु इसका कारण यह था कि वह पूर्णत: निवर्ससन थी[3] संकल व अयोध्या में मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनवाई गई किन्तु इसका श्रेय स्थानीय शासकों को जाता है। श्रीवास्तव का यही मत है कि बाबर एक कट्टर सुन्नी मुसलमान अवश्य था किन्तु धार्मिक कट्टरता उसमें नहीं थी। अन्य कट्टरपंथी मुसलमानों के समान वे गैर-मुसलमानों को सताना, अपना कर्त्तव्य नहीं समझता था।[4] 1505 ई. में वह बिलग्राम पहुँचा और गुरु खत्री के हिन्दुओं जोगियों से मिलना चाहा पर वो नहीं मिल सका बाद में 16 मार्च 1519 को यहाँ पहुँचा व उनसे भेंट की।[5]

बाबर का उत्तराधिकारी हुमायूं भी अपने पिता की भांति उदार स्वभाव वाला व्यक्ति था यद्यपि वह एक सच्चा सुन्नी मुसलमान था, इस्लाम के सिद्धान्तों का पालन करता था किन्तु उसमें सुन्नियों की भांति कट्टरता नहीं थी तथा अन्य मत मतांतरों के प्रति उसमें द्वेष की भावना नहीं थी। स्वयं उसकी पत्नी हमीदा बानो बेगम शिया थी तथा अपने फारस प्रवास के दौरान शिया मत के रीति-रिवाजों को भी अपनाता रहा। हिन्दुओं के प्रति उसके दृष्टिकोण का प्रमाण है कि चित्तौड़ की रानी कर्णावती गुजरात के शासक बहादुरशाह के विरुद्ध उससे सहायता मांगी लेकिन वो किसी कारणवश वंश सहायता नहीं कर सका, राजपूत शासकों ने विपत्ति के समय उसकी सहायता की थी। मालदेव शेरशाह के विरुद्ध उसकी सहायता करना चाहता था किन्तु परिस्थितिवश वह ऐसा ना कर सका। अमरकोट के राजा ने हुमायूं व उसे परिवार को शरण दी तथा अकबर का जन्म राजपूत शासक वीरसाल के महल में हुआ। इस तरह हुमायूं का हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध अच्छा रहा। राजनीति पर धार्मिक प्रभाव डालने का उसने सक्रिय कदम नहीं उठाया।[6]

इसी विषय में अकबर की धार्मिक नीति का शनै: शनै: विकास हुआ। अकबर आरम्भ से ही प्रतिभासम्पन्न व विचारशील व्यक्ति था यद्यपि उसे पढ़ने-लिखने का अवसर प्राप्त न हो सका किन्तु अपने प्रारंभिक शिक्षक अब्दुल लतीफ से उसने सुलह-ए-कुल की सीख अवश्य प्राप्त की जो उसका जीवन भर मार्गदर्शन करती रही। साथ ही शेख मुबारक के उदार विचारों तथा मोइनुद्दीन चिश्ती के प्रति उसकी असीम श्रद्धा व धर्म के विषय में जिज्ञासा ने इबादत-खाने की धार्मिक चर्चा, महजर की घोषणा व दीन-ए-इलाही की स्थापना के प्रति उसे प्रेरित किया उनसे सामाजिक समरसता को अपने शासन का आधार बनाया व सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में सद्भावना की स्थापना को आदर्श बनाया। उसने सभी व्यक्तियों को अपनी इच्छा अनुसार धर्म पालन की छूट दी, इसके पश्चात् उसने हिन्दू-मुस्लिम समन्वय स्थापित करने हेतु एवं राष्ट्रीय एकता स्थापित करने हेतु अपनी प्रजा को एक साझा धर्म देने का प्रयत्न किया।[7]

अकबर ने राजपूत स्त्रियों से विवाह किया जिससे उसकी उदार नीति को बल मिला उसने अपनी राजपूत पत्नियों को हिन्दू-धार्मिक रीत-रिवाजों के निर्वाह की छूट दी। जब महल

में ही मूर्तिपूजा की जा सकती थी तो महल के बाहर उसे रोकना असंगत था इस प्रकार अकबर अपने घर में ही हिन्दू धर्म के प्रभाव से घिर गया व उसकी हिंदू धर्म के प्रति कट्टरता शिथिल पड़ गई।[8]

हिन्दू पत्नियों से विवाह का ही परिणाम था कि सने 1562 ई. में उसने बागियों के स्त्री-बच्चों को गुलाम बनाने की मनायी कर दी। 1563 ई. में मथुरा तथा अन्य तीर्थ स्थलों से वसूल किया जाने वाला तीर्थ कर जिससे करोड़ों की आमदनी होती थी उसे समाप्त कर दिया तथा 1564 में जजिया कर भी समाप्त कर दिया।[9] अकबर की धार्मिक नीति पर जैन धर्म का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा आमेर के 'राजवंश' के साथ सम्बन्ध हो जाने के कारण ऐसा मालूम होता है कि बादशाह जैन धर्म के विद्वानों के संपर्क में बहुत पहले ही आ गया था।[10]

जैन धर्म के प्रति उसके आकर्षण का कारण इस मत की शिक्षाओं का व्यावहारिक व लोककल्याणकारी होना था तथा इस समय तक भी जैन मत ने भारत के विभिन्न केन्द्रों में अपना प्रभाव दृढ़ता से कायम कर रखा था। सोलहवीं शताब्दी के भारत में गुजरात, मालवा, राजस्थान, उत्तरी भारत व दक्षिणी भारत में जैन धर्म के प्रभाव का प्रमाण इस काल से प्राप्त जैन प्रतिमा लेखों से उपलब्ध हो जाता है।

इस सन्दर्भ में गुजरात जैन धर्म की विभिन्न शाखाओं यथा तपागच्छ व खरतरगच्छ का प्रमुख केन्द्र था। हीर विजय सूरी शांतिचन्द्र जिन चन्द्र सूरि व विजयसेन सूरि आदि जैन यतियों को प्राप्त शाही फरमान के आधार पर कहा जा सकता है कि गुजरात के सूरत, अहमदाबाद, खम्भात व कच्छ आदि क्षेत्रों में जैन धर्म का काफी प्रभाव रहा तथा इस काल में शत्रुंजय प्रमुख जैन तीर्थ स्थल था व गिरनार शंखेश्वर आदि महत्त्वपूर्ण तीर्थ थे।

उत्तर भारत अकबर के काल में दिल्ली दिगम्बर काष्ठ संघ का केन्द्र था तथा श्वेताम्बर यतियों का भी समाज पर अच्छा प्रभाव था। इसी प्रकार साधु टोडर आगरा का जैन भद्र पुरुष था जिसने अकबर को जैन मत के अनुकूल बनाकर आगरा व मथुरा में अनेक जैन मन्दिरों का निर्माण व जीर्णोद्धार करवाया।[11] इसी प्रकार जिन चन्द्र सूरि के लाहौर आगमन और विजयसेन सूरि लाहौर के शास्त्रार्थ से पता चलता है कि जैन आचार्यों का लाहौर तक प्रभाव रहा था।

इस काल में मालवा भी जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप में अपनी पहचान बनाता जा रहा था। अकबर कालीन मालवा में अनेक जैन प्रतिमाएँ एवं यंत्र लेख उपलब्ध है जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों से सम्बन्धित है इनमें से कुछ अभिलेखों में बादशाह अकबर का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।[12]

जहाँ तक दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रश्न है इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित नमकमंडी मन्दिर उज्जैन के 1570 ई., 1584 ई., 1605 ई. तथा धार 1602 ई. के पार्श्वनाथ प्रतिमा व ताम्र लेखों से भट्टारक परम्परा के आचार्यों का उल्लेख मिलता है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय का भी इस क्षेत्र में गहरा प्रभाव था। यहाँ के विभिन्न स्थलों यथा शाजापुर 1556, इंदौर 1560 (पीपली बाजार), शालापुर 1569 ई. इसके अलावा 1993 के उज्जैन से प्राप्त ताम्र एवं प्रतिमा लेखों से श्वेताम्बर मत की भट्टारक परम्परा का उल्लेख मिलता है। इन अभिलेखों से मालवा क्षेत्र के विभिन्न जैन केन्द्रों व प्रमुख जैन गणसंघों व आचार्यों की जानकारी मिलती है।

राजस्थान में भी जैन धर्म इस काल में पल्लवित होता रहा। राजस्थान के विभिन्न रियासतों के शासकों ने ना केवल अपने प्रशासन में जैन मतावलम्बियों को उच्च स्थान दिया वहीं दरबार में जैन आचार्यों का पर्याप्त सम्मान भी किया। मेवाड़ के महाराणा प्रताप के प्रशासन में मन्त्री भामाशाह का महत्त्वपूर्ण स्थान था वहीं दूसरी और महाराणा प्रताप ने मुनि हीर विजय को एक पत्र लिखकर धर्म प्रचारार्थ मेवाड़ में आने का निवेदन किया था। 1578 ई. में प्राचीन मेवाड़ी भाषा में लिखित यह पत्र जैन इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।[13]

इसी तरह इस समय अलवर में जैन काष्ठा संघ का महत्त्व रहा। परिणामस्वरूप दिल्ली एवं आगरा के कतिपय जैन श्रेष्ठियों द्वारा इस क्षेत्र में धार्मिक निर्माण सम्पन्न करवाए गए। आमेर राज्य में भी जैन धर्म का प्रभाव रहा मेवाड़ के भट्टारक पट्ट के आमेर आ जाने से इस राज्य में भट्टारक सम्प्रदाय की गतिविधियाँ बढ़ी तथा श्वेताम्बर परम्परा को जिन चन्द्र सूरी ने पर्याप्त संबल प्रदान किया।[14]

सिरोही भी जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा यहाँ के शासक राव सुरताण ने हीर विजयसूरी का सिरोही में स्वागत किया एवं

उनके उपदेशों से प्रभावित होकर शराब ना पीने, आखेट ना करने, मांस ना खाने एवं अनियमित सम्भोगी जीवन व्यतीत न करने की प्रतिज्ञा ली।[15]

मारवाड़ भी जैन मत के प्रभाव से अछूता न रहा। बीकानेर के महाराजा रायसिंह जिन चन्द्र सूरि के शिष्य बन गये। राजस्थान के प्रमुख जैन तीर्थों में मेवाड़ में उदयपुर का, सिरोही में आबू के चतुर्भुज व देलवाड़ा के मन्दिर, रणकपुर के मन्दिर, आमेर में सांगानेर की दादाबाड़ी, बैराठ व चाकसू प्रमुख तीर्थस्थल हैं।

दक्षिण भारत भी इस समय जैन धर्म का केन्द्र था, जहाँ की भट्टारक परम्परा ने उत्तर भारत को भी प्रभावित किया यहाँ के जैन मुनियों व आचार्यों ने विपरीत परिस्थिति में भी धर्म की नीति का स्थापित रखा।

इस प्रकार जैन धर्म की ख्याति तथा जैन मुनियों व आचार्यों के विद्वतापूर्ण ज्ञान की प्रशंसा सुन अकबर ने उन्हें दरबार में आमंत्रित किया। इनमें तपागच्छ और खतरगच्छ गणसंघों के आचार्य प्रमुख रहे। पद्मसुन्दर पहले जैन मुनि थे जिन्होंने अकबर के साथ संपर्क स्थापित किया। मुगल सम्राट के संरक्षण में इन्होंने अपनी पुस्तक 'अकबर शृंगार दर्पणकार' की रचना की।[16]

जैन धर्म के बारे में जानने हेतु समय-समय पर उसने जैन आचार्यों के मध्य शास्त्रार्थ करवाए। 1568 में उसने दरबार में नागपुरी या तपागच्छ के बुद्धिसागर और खरतरगच्छ के सिद्ध कीर्ति के बीच जैन धर्म के 'पौषाद' नामक धार्मिक क्रिया विषय पर एक वाद-विवाद करवाया जिसमें सिद्ध कीर्ति की विजय हुई तथा उसे बोरिदू की उपाधि दी।[17] 'पदम' सुन्दर जी इस धार्मिक वाद-विवाद से अलग रहे उनकी मृत्यु के पश्चात् हीरविजय सूरी के आगमन तक जैन-मुगल सम्बन्ध बाधित रहे।

विजयदान सूरी के शिष्य हीर विजय सूरी थोड़े ही समय में अपनी योग्यता से तपागच्छ जैन संघ के प्रमुख बन गये और 1566 में गुरु का पद प्राप्त किया। उनकी योग्यता के विषय में सुनकर अकबर ने गुजरात के सुबेदार शियाबुद्दीन अहमद खां के माध्यम से हीर विजय सूरी को आमंत्रित किया। उसके ज्ञान से प्रभावित होकर अबुल फजल ने सूरि जी के साथ धार्मिक गोष्ठी की, और सूरि जी ने मनुष्य के कर्म और निरंकार भ्रम के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसने हीर-विजय सूरि को बहुत सारी किताबें उपहार में दी जिसमें पदमसुन्दर की भी पुस्तक थी जिसको आगरा के पुस्तकालय में रखवा दिया गया।[18] पालिताना मन्दिर के वि.सं. 1639 (1582-82) के शिलालेख से लगता है कि सूरि जी 6 माह तक जानवरों की हत्या पर प्रतिबंध का आदेश जारी करने, मृतकों की संपत्ति जब्त करने का नियम रद्द करने जजिया कर व तीर्थयात्रा कर हटाने, कैदियों व बन्द परिंदों को मुक्त करने, पवित्र स्थान शत्रुंजय को जैन धर्मावलम्बियों को सौंपने, जैन पुस्तकालय स्थापित करने पर लुम्पक मैघजी के प्रमुख को धर्म की दीक्षा देने वाले और अनेक लोगों को तपागच्छ का अनुयायी बनाने वाले, गुजरात व अन्य क्षेत्रों में मन्दिर बनाने व मालवा प्रदेश के अन्य निवासियों को जैन बनाने वाले राजा त्रोणिक जैसा सन्त बनने पर शत्रुंजय की तीर्थ यात्रा करने हेतु अकबर को प्रेरित किया।[19]

हीर विजय सूरि मुगल दरबार में दो वर्ष तक रहे। अबुल फजल ने अकबर के दरबार में उन सर्वोच्च 21 विद्वानों के लिए यह कहा जाता है कि ये लोग दोनों लोकों का रहस्य जानते हैं, इन्हें भी रखा।[20]

अकबर ने जैन मत में आस्था प्रदर्शित करने हेतु अनेक फरमान जारी किये। 6 जून 1584 को एक फरमान जारी किया जिसमें अधिकारियों को आदेश दिया गया कि जिन स्थानों पर जैन मतावलम्बी बचे हुए हैं, जैन पर्युषण पर्व के 12 दिनों जीव हत्या की अनुमति न दी जाय।[21]

हीर-विजय सुरि के गुजरात लौटने पर उनके शिष्य शांतिचन्द्र 1587 तक मुगल दरबार में रहे। गुजरात लौटते समय शांतिचन्द्र ने अकबर की प्रशस्ति लेख गुजरात में जीव-हत्या रोकने सम्बन्धित तीर्थ यात्रा व जजिया के उन्मूलन हेतु शाही फरमान लेते गये तथा वर्ष में 6 माह जीव हत्या के प्रतिबंध हेतु सम्राट का फरमान मिला।[22]

1591 में खरतरगच्छ सम्प्रदायों के जैन आचार्य जिन चन्द्र सूरि की विद्वता की महिमा सुनकर अकबर ने उन्हें दरबार में आमंत्रित किया। कैम्बे से लाहौर की पैदल यात्रा के पश्चात् सम्राट से मिलने पर अकबर ने इनका आदर-पूर्वक स्वागत किया। इन्होंने भी हीर-विजय के समान भेंट अस्वीकार की व बादशाह को जैन धर्म से अवगत कराया। अत: बादशाह ने इन्हें 'युग प्रधान' की उपाधि प्रदान की।[23]

जैन दर्शन और ज्ञान के प्रति अकबर की लालसा इतनी अधिक थी कि उसने जैन मतावलंबी दुर्जनसाल से हीरविजय सूरि के उत्तराधिकारी के बारे में जानना चाहा तब उसे विजयसेन सूरि के बारे में जानकारी मिली और उसने एक फरमान जारी कर उन्हें दरबार में आमंत्रित किया। 31 मई 1593 ई. को विजयसेन सूरि अपने 100 आचार्यों सहित मुगल दरबार में उपस्थित हुए जहाँ भानुचन्द्र और अबुल फजल ने उनका स्वागत किया। उनके साथ आए शिष्य नन्दीविजय ने 8 अवदान सम्बन्धी धार्मिक क्रिया की जिसमें 8 वस्तुओं को एक साथ धारण किया जाता है। अकबर उनसे इतना प्रभावित हुआ कि नंदीविजय को खुशफहम (तीव्र बुद्धि) की पदवी दे दी। विजयसेन सूरि ने लाहौर में ब्राह्मणों के इस विचार का खण्डन किया कि जैन मतावलम्बियों की आस्था ईश्वर के अस्तित्व में नहीं थी। विजयसेन सूरी का सम्राट अकबर पर इतना प्रभाव पड़ा कि गायों, बैलों और भैंसों की हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा शाही फरमान में उसका विधान रखा कि मृत व्यक्तियों की सम्पत्ति पर सरकारी अधिकार और युद्ध बंदियों को बंधक बनाने पर रोक लगा दी जाए। विजयसेन सूरि से अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसे सवाई हीर विजय सूरि की उपाधि दी तथा छः महीने तक सिंधु नदी और कच्छ की खड़ी में मछली पकड़ने पर रोक लगा दी।

मुगल दरबार में एक अन्य जैन सन्त भानुचंद्र का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। अबुल फजल ने भानुचंद्र से दर्शन के 6 सिद्धान्तों की दीक्षा ली साथ ही भानुचन्द्र ने सूर्य के 1 हजार नामों पर एक टीका 'सूर्य सहस्त्रिका' लिखी और अकबर को उसका महत्त्व समझाया जिसका अकबर प्रतिदिन प्रातः स्मरण करता था।

भानुचंद्र के अनुरोध पर अकबर ने गुजरात के एक विरोधी जमींदार के समर्थक बंदियों को रिहा किया। बादशाह ने जैन संन्यासियों के निवास के लिए भूमिदान की जहाँ स्थापित मन्दिर में जैन तीर्थंकर शांतिनाथ की मूर्ति स्थापित की गई। इसी प्रकार सलीम पर आए खतरे के निवारण हेतु भानुचन्द ने अष्टोत्तर-शत-स्नान करवाया जिसमें जिन की मूर्ति का 108 बार स्नान करवाकर संकट दूर किया। उसने शत्रुंजय तीर्थ स्थान को कर मुक्त कराने हेतु फरमान भी हासिल किया। अकबर भानुचन्द्र और उसके शिष्य सिद्धिचन्द्र का बहुत सम्मान करता था। अकबर के कहने पर सिद्धिचन्द्र ने फारसी सीखना आरंभ किया। हीरविजय सूरि हेतु भानुचंद्र ने अकबर से भूमिदान प्राप्त किया। इन सन्तों को मुगल हरम तक में भी जाने की अनुमति थी तथा भानुचन्द्र और सिद्धचन्द्र ने मुगल शहजादों की शिक्षा में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।[26]

अकबर के व्यक्तिगत जीवन पर जैन सन्तों के साथ इस सहचर का अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा और उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन दिखाई देने लगे तथा उसके द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधार के प्रयास किये गये जो उसकी आशाओं में भी परिलक्षित होते थे। जैन धर्म से प्रभावित होकर बादशाह ने जिन अनुचित करों से मुक्त किया उनके सम्बन्ध में 'कृपारसकोष' रचयिता लिखते हैं कि ''पहले मृतक के धन को राजा कुमारपाल ने छोड़ा व अब अकबर बादशाह ने कर सम्बन्धी धन को छोड़ दिया। पहले गायों को बन्धनमुक्त अर्जुन ने किया। अब इस समय वधमुक्त अकबर ने किया।'' इसी कोष में आगे लिखते है कि ''सब प्रकार की मदिरा का इस बादशाह ने निषेध कर दिया। बादशाह ने जुआ खेलना बन्द कर दिया, शिकार खेलना भी बन्द कर दिया।[27] अकबर द्वारा जीव हिंसा निषेध और मांसाहार के प्रति अरुचि के अनेक प्रमाण मिलते हैं जिसके तहत उसने 6 माह अमारी का आदेश जारी किया।

हीर सौभाग्य काव्य में 6 महीने अहिंसा पालन के दिनों के नाम इस प्रकार से गिनाये गये हैं ''पर्यूषणों के दिन समस्त रविवार, सोफियान का दिन, सूर्य संक्रमण का दिन, बादशाह का जन्म जिस महीने हुआ वह पूरा महीना बादशाह के पुत्रों का जन्म दिन, रजबमास नवरोज का दिन और बादशाह के गद्दी पर बैठने का दिन गुरुवार।''[28]

चिमनलाल ढाया अपने लेख 'हीर विजय सूरि और The jain Teachers at the Court of Akbar में लिखा है कि गायों, बैलों, भैंसों, नर व मादा दोनों ही प्रकार के जानवरों को कढ़ाई से घर नहीं ले जाया जाता था। मृतक कर, समाप्त कर दिया, कैदी भी नहीं बनाये जाते थे।[29]

मांसाहार व जीव हत्या के निषेध के प्रति अकबर इतना अधिक गम्भीर हो गया था इसका प्रमाण इस तथ्य से मिलता है कि वो एक स्थान पर कहता है कि ''यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि मांसाहारी जीव सिर्फ मेरे शरीर को खाकर

ही तृप्त हो जाते और दूसरे जीवों के भक्षण से दूर रहते तो मेरे लिए यह बात बड़े सुख की होती और मैं अपनी शरीर का एक अंश काटकर मांसाहारियों को खिला देता तो मैं प्रसन्न होता।''[30]

अकबर जैन सन्तों के प्रभाव से अत्यंत गम्भीर सामाजिक प्रश्नों के प्रति भी अतिसंवेदनशील दृष्टिकोण रखते हुए समाज में नारियों की स्थिति में सुधार हेतु भी प्रयास करने को उद्यत हुआ। इस समय राजपूत समाज में सती प्रथा ने नारी उत्पीड़न की कुप्रथा के रूप में एक भयावह रूप धारण कर रखा था जिसमें मृत पति के साथ चिता पर पत्नी के अनुगमन को अनावश्यक महिमा मंडन प्रदान किया जाता था। जैन सन्त आरम्भ से ही इस कुप्रथा का विरोध करते चले आ रहे थे। जैन मुनि समन्त भट्टाचार्य ने राजस्थान में इस प्रथा के उभरते झुन्झुनूं केन्द्र में अपने उपदेशों द्वारा इसकी निन्दा की जिससे सती होने में विधवाओं को अन्य व्यक्तियों का सहयोग न मिले। जिनचन्द्र सूरि ने भी अपने समय में स्त्रियों को सती होने से रोककर उन्हें जैन धर्म में साध्वी के रूप में दीक्षित होने का दिशा-निर्देश दिया। 16वें शताब्दी के जैन गुरुओं ने भी इस अन्धविश्वास पर कठोर प्रहार किया। उन्होंने कहा कि अपने पति का सान्निध्य मृत्यु के बाद भी पाने की इच्छुक विधवा स्त्री के अनुसरण के बाद भी यह प्राप्त नहीं होता। ऐसा कृत्य क्रूरता का ही परिणाम है। सतियों की पूजा एवं सम्मान अन्य विश्वास जनित मूढ़ता है। इन उपदेशों के परिणामस्वरूप पर्याप्त मात्रा में स्त्रियों ने सती न होकर अपने परिवार का भरण-पोषण कर या धार्मिक दीक्षा लेकर समाज सेवा का व्रत स्वीकार किया। इससे प्रभावित होकर अकबर ने सती प्रथा के उन्मूलन हेतु प्रयास आरम्भ किये। 'अकबरनामा' से ज्ञात होता है कि सम्राट अकबर ने कई राजपूत विधवाओं को सती होने से रोकने में सफलता प्राप्त की।[31]

वास्तव में अकबर सत्य का शोधक था जहाँ से जो सत्य मिलता वह उसे ग्रहण करता। जैन मत से प्रभावित होकर न केवल उसने प्राणियों के प्रति दया भाव को अपनाया वरन दूसरी ओर जैन मत के कई पुनर्जन्म के सिद्धान्त में भी वह आस्था रखता था। अकबर के जैन धर्म के प्रति इस झुकाव को दरबार के कट्टरपंथी मुस्लिम इतिहासकार अबुल कादिर बदायूंनी ने भी स्वीकार किया है। वह कहता है कि इस बादशाह ने अपने कुछ नवीन प्रिय सिद्धान्तों का प्रचार किया था। सप्ताह के पहले दिन में प्राणी वध निषेध की कठोर आज्ञा थी क्योंकि यह सूर्य पूजा का दिन था। अकबर के जीवन पर जैन सन्तों के प्रभाव के विषय में बदायूंनी कहता है ''सम्राट अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा जैन साधुओं एवं ब्राह्मणों से एकान्त में विशेष रूप से मिलता था वे नैतिक, शारीरिक, धार्मिक व आध्यात्मिक शास्त्रों में धर्म की प्रगति में और मनुष्य जीवन की सम्पूर्णता में दूसरे विद्वानों की अपेक्षा अधिक उन्नत थे तथा वे अपने मत की सत्यता व इस्लाम के दोष बताने में बुद्धिपरक प्रमाण देते थे।''[32]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन धर्म व आचार्यों का बादशाह अकबर पर अत्यंत गहरा व स्थायी प्रभाव पड़ा। हीर विजय सूरी, विजय सेन सूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय और जिनचंद्र सूरि आदि जैन मुनियों की शिक्षा उसके हृदय पटल पर अमिट रूप छोड़ने में सफल रही और जैन धर्म के विषय में उत्तरोत्तर जानने की जिज्ञासा का परिणाम रहा कि 1578 ई. के बाद एक-दो जैन मुनि मुगल दरबार में हमेशा ही बने रहे। यह सम्पर्क जहाँ मुगलकाल में जैन मत के प्रभाव को बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ वहीं इसने अकबर व उसके उत्तराधिकारियों के शासन को भी उत्तरोत्तर जनकल्याणकारी व लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अकबर द्वारा स्थापित दीन-ए-इल्लाही मत जो दैवीय एकेश्वरवाद के सिद्धान्त से प्रेरित था, जैन मत की अनेक शिक्षाओं से प्रभावित था इसने अकबर की सुलह-ए-कुल की नीति को सार्थकता प्रदान की तथा अकबर को एक राष्ट्रीय सम्राट की पहचान प्रदान की।

आज के तनावपूर्ण युग में जहाँ धर्म और राजनीति अपनी नैतिकता खोकर उच्छृंखलता की सीमाएँ लांघकर साम्प्रदायिकता व अनेक समस्याओं को जन्म दे रही हैं ऐसे समय में अकबर व जैन धर्म के पारस्परिक सम्बन्धों का आदर्श मनुष्यता को पुनः सद्भावना, नैतिकता एवं सामाजिक व सांस्कृतिक एकता के पथ पर अग्रसर कर एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण कर भारत तथा विश्व को आध्यात्मिक क्षेत्र में पुनः गौरवपूर्ण पथ पर स्थापित कर सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. झा, प्रवीण कुमार एवं श्रीवास्तव, चन्द्र भान, मुगल शासकों का धार्मिक दृष्टिकोण, एक सर्वेक्षण, हिन्दुइज्म पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 2012, पृ.सं. 26
2. उपर्युक्त, पृ.सं. 18
3. चन्द्रा, डॉ. सतीश, मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुगलकाल तक, जवाहर पब्लिशर्स, दिल्ली, 2019, पृ.सं. 35
4. श्रीवास्तव, ए.एल., मुगलकालीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1985, पृ.सं. 34
5. राधेश्याम, मुगल सम्राट बाबर, बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, 1974, पृ.सं. 432-33
6. चौधरी, एम.एम., द स्टेट एण्ड रिलीजन इन मुगल इंडिया, इण्डियन पब्लिसिटी सोसायटी, कलकत्ता, 1998, पृ.सं. 18
7. बदायूनी जिल्द-2, पृ.सं. 391
8. शर्मा, डॉ. श्रीराम, द रिलीजन पॉलिसी ऑफ द मुगल एम्परर, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1988
9. चन्द्रा, सतीश, पूर्ववत, पृ.सं. 167
10. कृष्णमूर्ति, लेख जैन एण्ड द कोट ऑफ अकबर, इण्डियन हिस्टोरिकल कोटर्ली, भाग 33, 1944, दिल्ली, पृ.सं. 137-143
11. जैन, कैलाशचन्द्र, जैन धर्म का इतिहास, तृतीय खण्ड, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., दिल्ली, 1988, पृ.सं. 977-78
12. जैन, कैलाशचन्द्र, पूर्ववृत, सं. 1541, वर्ष फागुण मासे ... पातिसाह जी अकबर विजय राज्ये जी संघ धाम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंद कुंदान्वय श्री पद्मनन्दी देव...
13. जैन, राजेश, मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म, पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी, 1992 राजपूताना के जैन वीर, पाद टिप्पणी, पृ.सं. 341-42
14. जैन, कैलाशचन्द्र, पूर्ववृत, पृ.सं. 991-92
15. जैन, राजेश, पूर्ववृत, सूरीश्वर और सम्राट अकबर, पाद टिप्पणी, पृ.सं. 188
16. फजल, अबुल, आइने-ए-अकबरी, भाग-3, जदुनाथ सरकार (अनु.), लो प्राइस पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ.सं. 356
17. लैर्गउ जैकब इंस्क्रिप्शंस फ्रॉम पलिटाना जनरल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, अंक-2, पृ.सं. 56-63
18. श्रीवास्तव, डॉ. ए.एल., भारत का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1968, पृ.सं. 468
19. जी. बुह्यलर, जैन इंस्क्रिप्शंस फ्रॉम गुजरात एपिग्राफिया इंडिका, अंक 9, आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, कलकत्ता 1984, पृ.सं. 53-54
20. श्रीवासतव, ए.एल., पूर्ववत, पृ.सं. 467
21. गणि, देवविमल, हीर सौभाग्य महाकाव्य, अध्याय 74, कालन्द्री जैन संघ, कालन्द्री, राजस्थान, वि.सं. 2041, पृ.सं. 271-72
22. री बुहलर —पूर्ववत
23. श्रीवास्तव, एल.एल., पूर्ववत, पृ. 467
24. शास्त्री, हीरानंद, पृ.सं. 137-138
25. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, भानुचन्द्र देसाई, जैन प्रिस्ट एट द अकबर कोर्ट, जनरल ऑफ दी गुजरात रिसर्च सोसायटी, वोल्यूम प्ट, नम्बर 1, जनवरी, 1942, गुजरात, पृ.सं. 45
26. वही, पृ.सं. 47
27. शांतिचन्द्र जी, जैन कृपारसकोष, श्लोक 98, पृ. 16, श्लोक 102, 106, 107
28. गणि, देवविमल, पूर्ववृत, सर्ग-14, श्लोक 273-74, 75
29. जैन शासन, दिवाली अंक वीर, बनारस सिटी, संवत 2438, पृ. 138
30. फजल, अबुल, पूर्ववृत, भाग-3, पृ. 445-446
31. प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा, भारतीय स्त्री सांस्कृतिक सन्दर्भ (वी.के. वशिष्ठ, राजस्थान में सती प्रथा का निवारण सम्बन्धी लेख, रावत पब्लिकेशन, 1998, जयपुर
32. अल बदायूनी, मुन्खब उत् तवारीख, डब्लू एस. ला द्वारा अनुदित, भाग-2, करीम सन्स, कराची, 1884, पृ.सं. 264